# संविधान के सिंहावालोकन की जरूरत!

- अरुण कुमार त्रिपाठी

अपने सत्तरवें संविधान दिवस पर हम सभी को एक बार यह सिंहावलोकन जरूर करना चाहिए कि जिन उद्देश्यों के लिए संविधान बना था क्या हम उसे पूरा कर पाए हैं? संविधान को तीन प्रमुख उद्देश्यों में 'बांटा' गया है, पहला भारत की एकता और अखंडता, दूसरा लोकतंत्र और तीसरा सामाजिक क्रांति। हमारे संविधान निर्माताओं को यह चिंता निरंतर सताती रही है कि इन तीनों लक्ष्यों में से कोई एक दूसरे पर हावी न हो जाए बल्कि उनके बीच का संतुलन बरकरार रहे। इतिहास गवाह है कि - यह संतुलन बार-बार गड़बड़ाया है और उसे बार बार पटरी पर लाने की कोशिश हुई है। लेकिन संविधान का संतुलन पटरी पर तभी आया है जब उसे चलाने वालों ने वैसा चाहा है। अगर उसे चलाने वालों ने नहीं चाहा तो वह असंतुलन का ही शिकार हुआ है।

इसीलिए संविधान सभा के अध्यक्ष डा राजेंद्र प्रसाद ने 26 नवंबर 1949 को संविधान सभा में संविधान को पारित करते हुए कहा था कि, `` दोष तो देश की परिस्थिति और जनता में है। जिन व्यक्तियों का निर्वाचन किया जाता है यदि वह योग्य, चरित्रवान और ईमानदार हैं तो वे एक दोषपूर्ण संविधान को भी सर्वोत्तम संविधान बना सकेंगे। यदि उनमें इन गुणों का अभाव होगा तो वह संविधान देश की रक्षा नहीं कर सकेगा। आखिर संविधान एक यंत्र की भांति एक निष्प्राण वस्तु ही तो है।''

कहा जाता है कि संविधान खुद नहीं चलता। उसे लोग चलाते हैं। संविधान न तो लोगों का चरित्र सुधार सकता है और न ही उनके काम कर सकता है। वह सिर्फ लोगों में ऊर्जा भर सकता है। इसी आलोक में हमें एकता और अखंडता के उद्देश्य पर विचार करना चाहिए। भारत की एकता और अखंडता के लिए सबसे गंभीर चुनौती पूर्वोत्तर और कश्मीर से मिलती रही है। आरंभ में दक्षिण भारत और फिर पंजाब भी चुनौती बना था लेकिन उसे हल कर लिया गया। पूर्वोत्तर की चुनौती को कुछ समझौतों के माध्यम से हल करने का प्रयास जारी है जबकि कश्मीर की चुनौती को हल करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 370 को ही निष्प्रभावी बना गंभीर कदम उठाया गया है।

इस कदम को उठाने से पहले संवैधानिक प्रावधानों का कितना पालन किया गया यह तो सुप्रीम कोर्ट ही तय करेगा लेकिन इतना जरूर कहा जा सकता है कि इस दौरान लोकतंत्र को मुल्तवी किया गया। यह असंतुलन संवैधानिक भावना के अनुकूल तो नहीं ही है। भारत की एकता और अखंडता को मजबूती देने के लिए एक और प्रयास एनआरसी यानी नेशनल रजिस्टर आफ सिटीजन्स आफ इंडिया नाम से चल रहा है। भारत के संविधान के दूसरे भाग में इस बात उल्लेख है कि कौन भारत का नागरिक हो सकता है। उसमें नागरिकता देने या न देने के लिए धर्म को आधार नहीं बनाया गया है। लेकिन जिस तरह का नागरिकता संशोधन विधेयक के बहाने धार्मिक आधार को जोड़ा जा रहा है उससे हम संविधान की मूल भावना से भटकते हुए दिखाई दे रहे हैं।

एक धर्मनिरपेक्ष राज्य क्या होता है इस बारे में स्पष्ट करते हुए संविधानविद और ड्राफ्टिंग कमेटी के चेयरमैन डा भीमराव आंबेडकर ने कहा था कि , ``एक धर्मनिरपेक्ष राज्य का मतलब यह नहीं होता कि हम नागरिकों की धार्मिक भावनाओं का ख्याल नहीं करेंगे। एक धर्मनिरपेक्ष राज्य का कुल मतलब यही होता है कि संसद किसी एक धर्म को देश के सभी लोगों पर थोपने में सक्षम नहीं होगी। संविधान इतनी सीमाएं ही निर्धारित करता है।'' इसी के साथ उन्होंने यह भी याद दिलाया था कि संविधान तो अच्छा ही होता है पर मनुष्य कमतर होता है। भारतीय संविधान नागरिकता ही नहीं मंदिर-मस्जिद विवाद से लेकर, गोरक्षा और माब लिंचिंग जैसे तमाम मोर्चों पर अपनी सेक्यूलर भावना को बचाने के लिए लड़ रहा है। शायद विभाजन के बाद उसके सामने यह सबसे गंभीर चुनौती है। विडंबना है

कि भारतीय संविधान गंभीर अविश्वास के वातावरण में तैयार और लागू किया गया, और आज भी उस पर वह साया मंडरा रहा है।

भारतीय संविधान के अन्य दो प्रमुख उद्देश्य हैं, लोकतंत्र और सामाजिक क्रांति। मौलिक अधिकारों और नीति निदेशक तत्वों के साथ मूल कर्तव्यों और पांचवीं व छठवीं अनुसूची में ऐसी व्यवस्थाएं हैं जिनके माध्यम से इस देश के विभिन्न समुदायों के भीतर लोकतंत्र का संचार करते हुए सामाजिक क्रांति को आगे बढ़ाया जा सकता है। कई बार सामाजिक क्रांति के दौरान किसी एक तबके को अतिरिक्त अधिकार देकर समता के लोकतांत्रिक सिद्धांत की उपेक्षा की जाती है। इसीलिए आंबेडकर ने कहा था कि लोकतंत्र एक प्रकार की सरकार नहीं है बल्कि वह समाज का एक रूप है। इसमें दो तत्व शामिल होते हैं। एक तो अपने सहवासियों के प्रति आदर और समता की भावना और दूसरा ऐसा सामाजिक संगठन जो कठोर सामाजिक बाधाओं से मुक्त हो।

संयोग से भारत में इन दोनों तत्वों की कमी थी और उसका जितना निर्माण स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हुआ वह विभाजन की कटुता में बिखर गया था। फिर भी इन उद्देश्यों का एक प्रयोजन था कि भारत को एक उदार समाज बनना होगा अगर सफल लोकतांत्रिक गणराज्य कायम करना है। संविधान ने समाज के पिछड़े तबकों को आरक्षण देकर और अल्पसंख्यकों को संवैधानिक सुरक्षा देकर पारस्परिक आदर और समता की उसी भावना को कायम करने का प्रयास किया था। उसका लाभ भी मिला और लोकतंत्र और सामाजिक क्रांति एक साथ मिलजुलकर आगे बढ़े। लेकिन आज लोकतंत्र पर एक ओर राजनीतिक दलों के निहित स्वार्थ और दूसरी ओर पूंजी की मुनाफे की लालसा इस कदर हावी हो चली है कि यह दोनों उद्देश्य लड़खड़ा रहे हैं। लोकतंत्र पर धन का बोलबाला हो गया है और नैतिकता को तिलांजलि दे दी गई है। जो दल बदल विधेयक दलों को मर्यादित करने के लिए लाया गया था आज उसी की धज्जियां उड़ाई जा रही हैं। जिस धर्म और जाति की दीवार को कम करके भारतीय लोकतंत्र को मजबूती देने की बात थी आज वही राजनीतिक दलों की चुनावी नैया के पतवार हो गए हैं। ऐसे में जो सामाजिक क्रांति कभी जोर पकड़ती हुई दिख रही थी आज वह संकीर्णता का शिकार हो गई है।

यह खतरा आरंभ में जताया गया था कि संस्कृति के नाम पर सामाजिक क्रांति और लोकतंत्र को चुनौती मिल सकती है। आज संस्कृति के नाम पर कट्टरता बढ़ रही है, और बराबरी तथा भाईचारा पछाड़ खा रहे हैं। संस्कृति के इस पुनरुत्थान को राष्ट्रवाद से जोड़ दिया जा रहा है और वह देश की एकता और अखंडता के नाम पर लोकतंत्र और सामाजिक क्रांति के उद्देश्यों से घमासान कर रहा है। आज समाज के सभी तबकों को यह समझने की जरूरत है कि संविधान के तीनों उद्देश्यों में संग्राम होने से कोई भी ताकतवर नहीं रह पाएगा। संविधान किताब की शक्ल में भले बचा रहे लेकिन उसकी भावना कमजोर हो जाएगी। इसलिए जरूरत इन तीनों उद्देश्यों को समझने और उसमें तालमेल बिठाने की है।

(प्रस्तुति: मनुज फीचर सर्विस)

नोट: मनुज फीचर सर्विस में छपे लेखों के विचार लेखक के अपने हैं। माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। यहां प्रकाशित सामग्री का उपयोग गैर व्यावसायिक कार्यों के लिए करने हेतु किसी अनुमति की आवश्यकता नहीं है। मनुज फीचर सर्विस का उल्लेख अवश्य करें।